सही नाप

ईशा सरदेसाई द्वारा पुनर्लिखित

बहुत समय पहले की बात है, दक्षिणपूर्वी चीन में, हरी-भरी पहाड़ियों के बीच बसे, वूयुआन नामक गाँव में एक आदमी रहा करता था। उसे संख्याएँ बहुत पसन्द थीं। वह किसी भी चीज़ की अगर कोई क़ीमत आँक सकता था तो कुछ न कुछ ज़रूर आँका करता। अगर किसी चीज़ की कुछ ख़ास नाप-तौल या गिनती हो सकती थी तो वह अपनी अलंकृत भाषा में ज़रूर करता। संख्याओं से जो स्पष्टता, आसानी, सुरक्षा महसूस होती, वह उसे पसन्द थी। उसकी दुनिया का एक ढाँचा था जिसे उसने संख्याओं से सुरक्षित कर रखा था, तरह-तरह की इकाइयों में बाँट रखा था। उसमें एक व्यवस्था थी। बड़ी अर्थपूर्ण थी उसकी दुनिया।

एक शाम की बात है जब वह आदमी अपनी झोपड़ी में, हाथ में काग़ज़ का एक पुलिन्दा लिए, पैर फैलाकर ज़मीन पर बैठा था। वह काग़ज़ पर अपने पैर का आकार उतार रहा था।

उसने एक ओर सिर झुकाया और नज़र तिरछी करके बड़े ध्यान से देखा। होंठों में दबी उसकी ज़बान, मुँह के एक किनारे से लगातार बाहर झाँक रही थी। बहुत ही आहिस्ता-आहिस्ता, उसने अपनी एड़ी के चारों तरफ़ क़लम घुमाई। फिर, रुककर सिर को दूसरी ओर झुकाया, और पैर की उँगलियों के बीच में से क़लम को घुमाते हुए उनका भी आकार उतार लिया। असल में इन जनाब को नए जूते बनवाने थे और इन्होंने ठान लिया था कि जूते तो इनके पैरों में बिलकुल सही बैठने ही चाहिए।

जब उस आदमी को पूरी तरह से तसल्ली हो गई कि उसने अपने पैर का आकार बिलकुल ठीक-ठीक उतार लिया है तो वह पैर के नीचे दबे काग़ज़ को बाहर खींचकर, उस पर बने पैर के आकार की नाप-जोख करने लगा। एड़ी से पंजे तक, वह ठीक 'इतना' लम्बा और ठीक 'इतना' चौड़ा था। उसने अपने तलवे के हर एक कोण और हर एक घुमाव को अच्छी तरह से जाँच लिया — लम्बाई में भी ओर चौड़ाई में भी। अपनी नाप-जोख को उसने कई बार जाँचा और फिर इसी तरह दूसरे पैर की भी नाप ले ली।

अगली सुबह जब सूरज नींद से जागकर, पहाड़ियों के पीछे से निकल ही रहा था कि वह आदमी बाज़ार जाने के लिए चल पड़ा। उसे वहाँ पैदल जाना था, रास्ता कई घण्टों का था — सबसे पास वाला गाँव बहुत दूर जो था। धूल भरे, टेढ़े-मेढ़े घुमावदार रास्तों पर, पीले फूलों से सजे किनारों वाले, पहाड़ी सीढ़ीदार खेतों से होकर वह चलता चला जा रहा था। धीरे-धीरे धूप तेज़ होती गई . . . सूरज सर पर आ गया। अब वह आदमी थोड़ा-थोड़ा हाँफ़ने लगा था।

आख़िरकार वह बाज़ार पहुँच ही गया। बहुत भीड़-भाड़ थी वहाँ। दुकानदार, खाने-पीने की चीज़ों, रेशमी कपड़ों से लेकर ताँबे के बर्तनों तक, हर चीज़ बेच रहे थे और ख़रीददार लगे थे उनसे मोल-भाव कर बेहतरीन सौदे पटाने में। दूर से ही उसे मोची की दुकान दिख गई।

कमर पर बँधे थैले को कसकर पकड़े हुए, वह भीड़ को धकेलते हुए उसमें से अपना रास्ता बनाता जा रहा था। उसके काग़ज़, पैर की नाप-जोख, थैले में ही रखे उसके अस्त-व्यस्त सामान में ही कहीं थे। हाथ डालकर उसने थैले को टटोलकर देखा। उसके हाथ, घर से लाए हुए खाने के डिब्बे से टकराए, फिर कोई लम्बी-सी ठोस चीज़ उसके हाथ में आई, शायद उसकी पानी की बोतल थी। ख़ुशी से गुनगुनाता, वह थैले को टटोलता हुआ चला जा रहा था।

कुछ ही पल बाद, उसने अपने आप से कहा, "अजीब बात है! मिल ही नहीं रहा है।" और अब की बार उसने पागलों की तरह फिर से सारा थैला छान मारा। पर काग़ज़ नदारद! फिर वह हाथ से अपने बदन को जगह-जगह थपथपाकर देखने लगा — छाती पर, जाँघ पर, यहाँ तक कि पीठ पर भी। हो सकता है कहीं कोई गुप्त जेब हो जहाँ उसने किसी तरह वे नाप वाले अपने क़ीमती काग़ज़ खोंस दिए हों!

पर न कहीं कोई जेब थी, न काग़ज़। वह सड़क के बीचोबीच, जहाँ का तहाँ खड़ा रह गया। काग़ज़ गुम हो जाने का कड़वा सच उसे समझ में आने लगा। वह सुन्न-सा पड़ गया। आस-पास धक्कम-धक्का करती भीड़ को ख़ाली नज़रों बस देखता रहा।

आख़िर में, उसने एक गहरी, थकी हुई-सी साँस ली। ऐसा लग रहा था मानो उसका सारा जोश ही ठण्डा पड़ गया हो। अब वह करे तो क्या करे? नए जूते तो उसे चाहिए ही थे और वे पैरों में बिलकुल सही बैठें भी। एक ही रास्ता था . . .उसे वे काग़ज़ लेने वापस जाना ही होगा।

सो अपने थके हुए शरीर को जितना हो सके उतनी तेज़ी-से धकेलते हुए वह घर वापस चल दिया। गाँव की ख़ूबसूरती उसकी आँखों को दिखाई ही नहीं दे रही थी। बार-बार वह अपने आप को डाँटता-कोसता हुआ चला जा रहा था। वह समझ ही नहीं पा रहा था कि वह इतना लापरवाह हो कैसे गया, ऐसी बेवकूफ़ी उससे हुई कैसे। वह नाप जिसे बिलकुल सही-सही उतारने में उसने इतना समय लगाया था, उसे लाना वह भूल कैसे सकता था?

आख़िरकार वह घर पहुँचा। उसने सामने का दरवाज़ा खोला तो उसे वे काग़ज़ कमरे में वहीं पड़े मिले जहाँ वे छूट गए थे। खिजलाहट के कारण बड़बड़ाते हुए वह काग़ज़ों पर झपट पड़ा। हाँ, मन को थोड़ी राहत भी महसूस हुई। फिर वह दोबारा उस सुदूर गाँव की लम्बी यात्रा पर निकल पड़ा।

जब वह वापस बाज़ार पहुँचा तो दिन लगभग ढल चुका था। अगर वह नज़र ऊपर उठाता तो उसे दिखता कि साँझ के धुँधले आसमान में तारे झाँकने लगे थे, हर चीज़ धुँधली बैंगनी रोशनी से घिर गई थी। पर उसे तो दिख रही थी बस छँटती हुई भीड़, ख़ाली होती हुई सड़कें और अपना माल बाँधते हुए दुकानदार।

वह मोची की दुकान की ओर बढ़ चला। वह अब भी हाँफ़ रहा था, माथे पर पसीना चमक रहा था। कुछ और नज़दीक आने पर उसने देखा कि दुकान का दरवाज़ा तो बन्द है। एक नौजवान जो दिखने में काम सीखने वाला लग रहा था, दुकान की सीढ़ियाँ झाड़ रहा था।

उस आदमी ने नौजवान से पूछताछ करते हुए कहा, "मुझे आज ही जूते ख़रीदने हैं। क्या मोची महाशय अन्दर हैं?"

नौजवान सीढ़ियाँ झाड़ते-झाड़ते रुक गया और उसने नज़र उठाकर उस आदमी की ओर देखा। "माफ़ कीजिएगा, दुकान तो अब बन्द हो चुकी है। मोची साहब घर जा चुके हैं। आपको फिर किसी दिन आना होगा।"

"क्या . . .!" उस आदमी ने आँखें फैलाकर नौजवान को देखा और कुछ हकलाते हुए बोला, "पर . . . पर. . . आप समझ नहीं रहे हैं कि आज दिनभर मुझ पर क्या गुज़री है!" और फिर तो उसने अपनी नाप-जोख वाली पूरी राम-कहानी ही सुनानी शुरू कर दी कि वह नाप कितनी ख़ास है, और नाप वाले वे काग़ज़ घर पर ही छूट गए, और फिर कैसे उन्हें लाने के लिए उसे दोबारा वापस जाना पड़ा। वगैरह, वगैरह।

नौजवान ने उसे घूरा, पहले कुछ ताज्जुब से और फिर उसके चेहरे पर दया का भाव आया। जब वह आदमी अपनी राम-कहानी सुना चुका तो नौजवान ने कहा, "लेकिन साहब जी, आप भले ही अपने पैरों की नाप घर छोड़ आए थे, पर क्या आपके पैर पूरे दिन आप ही के पास नहीं थे?"

© २०१८ एस. वाय. डी. ए. फ़ाउन्डेशन®। सर्वाधिकार सुरक्षित।

यह कहानी, ईसा पूर्व तीसरी शताब्दी में लिखी गई एक प्राचीन चीनी नीतिकथा पर आधारित है।